छिपकली की पूछ

राघवेन्द्र गदगकर
चित्रः प्रिया कुरियन
अनुवादः शशि सबलोक

वैसे, मेरा प्यार तो इंडियन पेपर वास्प ही था, पर दिल उस छिपी कली पर भी आ गया जिसे लोग छिपकली नाम से ज़्यादा जानते हैं। मेरे गुरु माधव गाडगिल से मेरी हालत देखी न गई। और उन्होंने मुझे बॉम्बे नैचुरल हिस्ट्री सोसाइटी जाने की सलाह दी।

छिपकलियों से मुलाकात

मैंने भी देर न की। ट्रेन पकड़ी और बैंगलोर से सीधे बम्बई आ पहुँचा। सुबह का वक्त था। डेनियल साहब बादस्तूर दफ्तर में मौजूद थे। डेनियल साहब सरीसृपों (रेंगनेवाले) और उभयचरों (ज़मीन और पानी दोनों में रहने वालों) के खासे जानकार थे। इस्तकबाल के बाद उन्होंने मुझे छिपकलियों से मिलवाया। कई कई रैक उनसे भरे हुए थे। मैं जितना चाहूँ उनके साथ वक्त बिता सकता था। मेरे हाथ में पकड़े सूटकेस को देखकर वे बोले, "बम्बई में रहोगे कहाँ?"

मैं बोला, "पता नहीं।"

थोड़ा सोचने के बाद वो फुसफुसाए, "किसी को कानों-कान खबर न हो। तुम यहीं फर्श पर छिपकलियों की रैक के बीच सो जाया करना। तुम्हारे मेरे अलावा सिर्फ चौकीदार को इसका पता हो।"

ऐसा ही हुआ। हर सुबह चुपके से निकलकर मैं चौकीदार के साथ चाय की चुस्कियाँ लेता। और 10 बजे विज़िटर्ज़ की तरह फिर चला आता। ऐसे ही शाम को जाते विज़िटर्ज़ की तरह निकलता और रात नौ बजे चुपके से आकर छिपकलियों के बीच लेट जाता।

मज़ेदार दिन थे। बम्बई से प्यार हो गया था मुझे। खूब लम्बे चलते रस्ते, सस्ते रेस्टोरेंट, सस्ते सिनेमाघर। ऊपर से फुटपाथ में बिकतीं बेशुमार किताबें। बैंगलोर वापसी पर मैंने कुछ पिंजरे बनाए। और घर में घूमती छिपकलियों को उनके हवाले कर दिया। मैं घण्टों उन्हें लड़ते, प्रेम करते, अण्डे देते देखता। उनके छोटे अण्डों से फूटते बच्चों को देखना

अद्‌भुत था। जैसे ही मेरी पत्नी को पता चला कि अब मैं रात भर जागकर छिपकलियों की इकोलॉजी को और समझूँगा। उन्हें गश ही आ जाता। पर इसकी नौबत नहीं आई। मैं वापस पेपर वास्प के पास चला आया।

पर छिपकलियाँ मेरे दिल में हमेशा रहीं। और मैं गाहे-बगाहे उनके बारे में पढ़ता रहता।

जंगल की छिपकलियाँ

उन्हीं दिनों मैंने डोनाल्ड टिंकल के काम को जाना। उन्होंने छिपकलियों की एक ही प्रजाति (Uta stansburiana) पर नौ साल तक काम किया था। इस दौरान उन्होंने 3729 छिपकलियों की निशानदेही की। उन्होंने 12927 बार छिपकलियों को पकड़ा, छोड़ा और फिर पकड़ा। वे और उनके साथी सारा-सारा दिन छिपकलियों को खोजने चप्पा-चप्पा छान मारते। कभी वो किसी एक छिपकली पर ही पूरा ध्यान लगा देते। वो क्या-क्या करती है?, कहाँ जाती है?, कैसे साथी तलाशती है? उन्होंने छिपकलियों को पकड़ने, उनका वज़न लेने, नपाई करने और छोड़ देने के तरीके खोज लिए थे।

बचपन में हमने मज़े-मज़े में कितनी ही छिपकलियों को पकड़ा होगा। अगर स्कूल में ही पता चल जाता कि इस पर अध्ययन हो सकता है, तो तभी से कुछ आँकड़े इकट्‌ठा कर लेते।

मैं पेपर वास्प की दिलचस्प दुनिया में कुछ इस तरह मुब्तला रहा कि Uta stansburiana, को सालों भूला रहा। 1996 में मेरी स्मृति में छिपकलियाँ फिर दौड़ती आईं, और साथ ही उनके पीछे दौड़ते डोनाल्ड टिंकल आए। इस साल कैलिफोर्निया में नर Uta stansburiana, पर एक अध्ययन हुआ कि कैसे और क्यों इनके गले पर तीन रंग पाए जाते हैं... नारंगी, पीला और नीला।

इतनी पीढ़ियों से क्यों तीन रंगों के नर बने हुए हैं, यह समझने के लिए अध्ययन हुआ। नारंगी गले वाले नर सबसे लड़ाके पाए गए। वे अपने बड़े इलाके पर कब्ज़ा रखते हैं ताकि मादाओं को आकर्षित कर सकें। नीले गले वाले नम्र और छोटे इलाके वाले होते हैं। ये आपस में मिल-जुलकर रहते हैं। पीले गले वालों की बनावट मादाओं से बहुत मिलती है। इनका कोई अपना इलाका नहीं होता। कई बार तो वे मादाओं का ढोंग रचते दूसरे नरों के इलाकों में घुस जाते हैं। और उस इलाके के नरों की ओर आकर्षित मादाओं के साथ प्रेम सम्बन्ध बना लेते हैं।

तीनों की फिटनेस इतनी अलग है कि किसी एक का बने रहना और बाकी दो का खत्म हो जाना जैसा मामला बनता दिखता नहीं है। प्रकृति के चुनाव का तरीका संख्या पर निर्भर करता है। दूसरों की तुलना में आपकी संख्या ज़्यादा है तो आप बने रहेंगे।

जब नारंगी नर ज़्यादा हो जाते हैं तो नीले वालों को खेल से बाहर कर देते हैं। पर वे छिपे रुस्तम पीलों से मात खा जाते हैं। नतीजा यह कि नारंगी कम हो जाते हैं और पीले बढ़ जाते हैं। नारंगियों के कम होते ही नीलों की संख्या बढ़ने लगती है। क्योंकि सामने मैदान साफ होता है। पीले नर नीलों की इलाके में सेंध नहीं मार पाते हैं। क्योंकि एक तो नीलों में आपसी भाईचारा ज़्यादा होता है, दूसरे उनके छोटे इलाकों पर पहरेदारी मुस्तैदी से होती है। तो पीले कम होने लगते हैं। इनके कम होते ही नारंगियों की संख्या में इज़ाफा हो जाता है। और यह चक्र चलता रहता है।

यह जानना इतना दिलचस्प था कि एक बार

फिर मैं छिपकलियों की ओर खिंच गया। और पता करने लगा कि छिपकलियों पर कहाँ क्या काम हो रहा है।

...

कर्नाटक का हम्पी गाँव सैलानियों में बेहद मशहूर है। एक तो यहाँ 14वीं शताब्दी के विजय नगर शासनकाल के खण्डहर हैं। दूसरा, महीन नक्काशीदार मन्दिर। पर राजकुमार राद्दर का यहाँ आना किसी भी सैलानी या भक्त से ज़्यादा होता था। राजू ने यहाँ की साउथ इंडियन रॉक अगअमा गिरगिट पर काफी काम किया। उसकी हर हरकत को ध्यान से देखा। जैसे, उसका पुश अप की मुद्रा में आना या सिर को हिलाना डुलाना, पूँछ उठाना, गले की रंगीन चमड़ी को फुला लेना, टाँगों को खींचना, पीठ को उँचा लेना और पीठ के ऊपरी हिस्से को चपटा कर लेना। राजू इन्हें गिरगिट की भाषा कहते थे। दुखद है कि 35 साल की उम्र में वे नहीं रहे। उनके साथ ही यह दिलचस्प काम भी कुछ समय के लिए रुक गया।

पिछले दिनों मेरी सहकर्मी मारिया ठाकर और उनके छात्रों ने इसी पर काम करना शुरू किया। अपने आसपास के मुताबिक रंग बदलने की बात तो कइयों को पता होगी। पर असल कमाल तो अपने दुश्मन या साथी को रंग बदलकर इशारे करने में है। और ज़रूरी है कि यह काम फौरी तौर पर हो।

मारिया और अनुराधा कुछ नर और मादा गिरगिटों को प्रयोगशाला ले आईं और उन पर कई प्रयोग किए। पाया गया कि जब नर मादा के रुबरु हुए तो रंग उतनी तेज़ी से नहीं बदला जितना तब हुआ जब नर नर से रुबरु हुए।

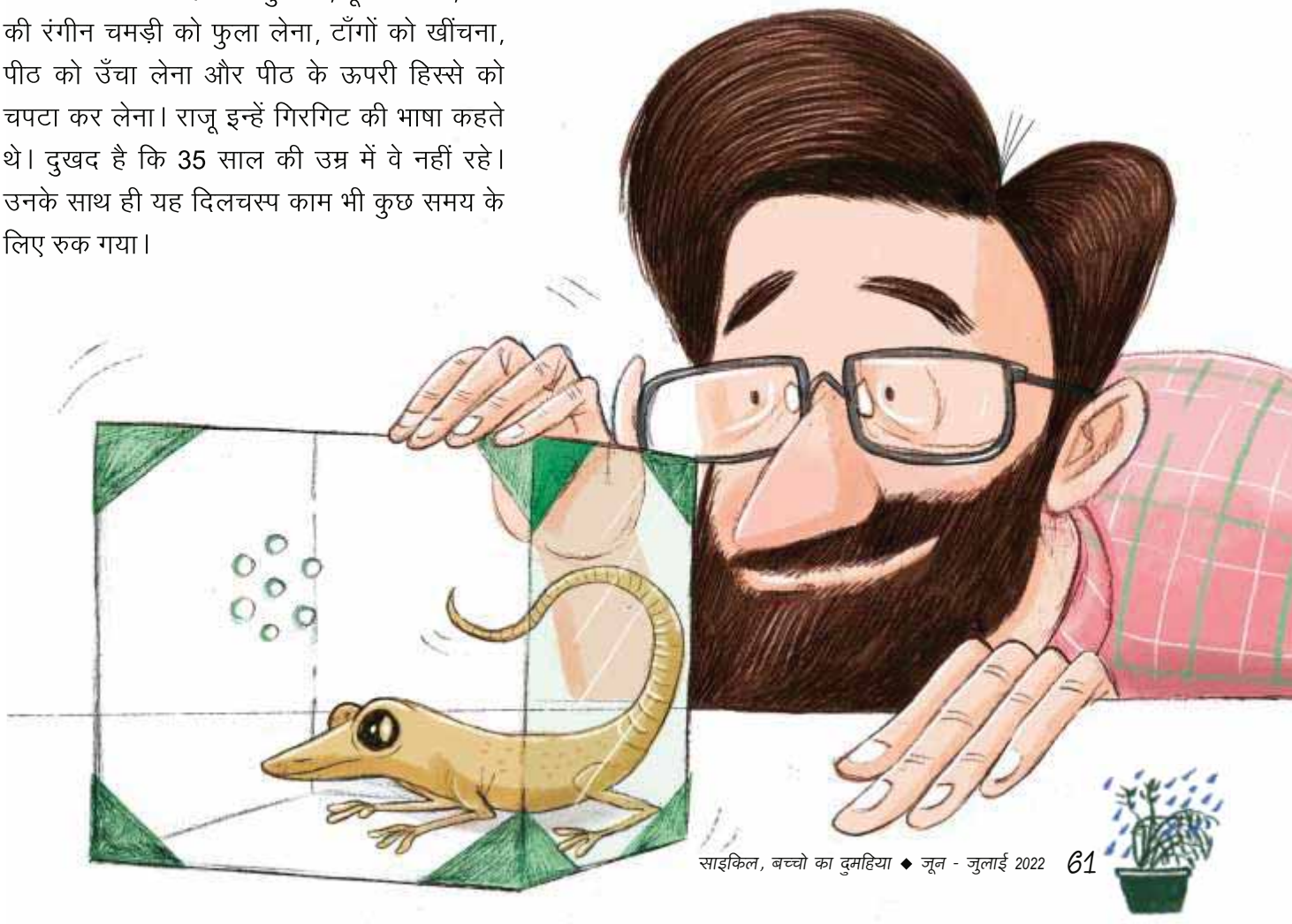

यह भी पता लगा कि नर एक सेकेण्ड में रंग बदल सकने की क्षमता रखते हैं। शरीर के अलग-अलग हिस्सों में यह बदलाव अलग होता है। साथी से मिलन और आक्रामक सम्बन्धों के दौरान रंगों में बदलाव अलग होता है। पहली बार एगैमिड छिपकलियों में इस तरह की बात रिकॉर्ड की गई थी। इससे कई सवाल खड़े हुए। जैसे, आसपास के हिसाब से तेज़ी-से रंग बदल पाने की क्षमता का नर की फिटनेस से कोई लेना-देना है क्या? क्या इससे मादा के लिए उसका आकर्षण बढ़ जाता है? या दूसरे नर उससे डरने लगते हैं?

रॉक छिपकली के अनुराधा और मारिया के अध्ययन से कई सवाल उठते हैं। इनका जवाब पाने के लिए शहरी जीवों और गाँवों ना कि जंगल में रह गए उनके भाई बन्धों का अध्ययन किया जाना आवश्यक है। शहर में उनके सामने नई चुनौतियाँ होती हैं। हमारी ही तरह। नए दुश्मन, नए संसाधन हैं। तेज़ी से बदली जगह और समय के साथ उन्हें ज़िन्दा रहने के नए तौर-तरीके खोजने पड़ते हैं। छिपकलियाँ इन दिक्कतों से कैसे निपटती होंगी?

इस बार अनुराधा और मारिया कर्नाटक के कोलार ज़िले के कम शोर शराबे वाले जंगलातों के साथ साथ बंगलौर की भीड़ भाड़वाले इलाकों में भी गईं। जहाँ तरह तरह के निर्माण कार्य हो रहे थे। दोनों ही जगहों से उन्होंने छिपकलियाँ पकड़ीं। उन्हें प्रयोगशाला में लाईं। उन पर प्रयोग कर उन्हें वापस वहीं छोड़ दिया। उनके प्रयोगों से पता चला है कि

• शहरी नरों में रंग बदलना धीमे होता है।

• सुरक्षित रहने की जगह चुनने के मामले में शहरी नर ग्रामीण नरों की तुलना में जल्दी सीखते हैं और जल्दी भूल भी जाते हैं।

• शहरी नर रिस्क ज़्यादा लेते देखे गए। इंसानों से डरना कम दिखा।

इन नतीजों ने कुछ और सवाल खड़े कर दिए हैं।

क्या सचमुच ये बदलाव शहरीकरण के कारण हैं? ये हमेशा बने रहेंगे या परिस्थितियों के साथ बदल जाएँगे? बढ़ते शहरीकरण से रहवासों का नष्ट होना एक वैश्विक समस्या है। इस दिशा में आगे होने वाले अध्ययनों के लिए यह अध्ययन काफी फायदेमन्द होगा।

मारिया कहती हैं कि इस शानदार जीव की कलाबाज़ियाँ कमाल की हैं। इतने सालों से इनके साथ काम कर रही हूँ। कितनी ही बार पकड़ा है। पर फिर भी गच्चा देने में इनका कोई सानी नहीं। और इन्होंने काट लिया तो अकल ठिकाने आ जाती है।

मारिया और अनुराधा को यूँ छिपकलियों के पीछे जाते देख सोचता हूँ कि अब तो हमें वैज्ञानिकों की वो घिसी पिटी छवि बदल ही डालनी चाहिए जिसमें सफेद दाढ़ीवाला बूढ़ा सफेद कोट में गहरी सोच में डूबा है।

(शुक्रिया The Wire. पूरा लेख यहाँ पढ़ा जा सकता है: More Fun Than Fun: My Favourite Lizard Stories)